श्रीप्रभु pratibha Part-52-53, July-December-2021, pg.-80-88
R.N.I–UPHIN/2008/30056, ISSN-0974-522X, JIF-4.781

तार्किक भाववाद में सत्यापनीयता के निकषों की समीक्षा

प्रियान्शु अग्रवाल

सारः- प्रस्तावित शोध-पत्र तार्किक भाववाद के उद्भव, विकास एवं स्वरूप की विवेचना हैं। तार्किक भाववाद किस प्रकार समकालीन पाश्चात्य दर्शन में एक आन्दोलन के रूप में उदित होता है एवं यह कैसे दार्शनिक विचारों में परिवर्तन लाता है। इसकी व्याख्या करना इस शोध-प्रत्र का प्रमुख उद्देश्य हैं। साथ ही तार्किक भाववाद एवं पूर्ववर्ती अनुभववाद अथवा पूर्ववर्ती भाववाद के दार्शनिक विचारों में क्या समानता या असमानता है जो तार्किक भाववाद को दर्शनशास्त्र की इन विचारधाराओं से पृथक करता हैं। इस क्रम में शोध-पत्र के अन्तर्गत सर्वप्रथम तार्किक भाववाद के मूलभूत दार्शनिक उद्देश्यों की चर्चा की गई हैं। तदुपरान्त, तार्किक भाववादियों के द्वारा इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु कौन-कौन से निकष अथवा मानदण्ड प्रस्तुत किए गए हैं इसकी विवेचना की गई है एवं अन्त में, तार्किक भाववादियों द्वारा प्रस्तुत निकषों का विश्लेषण अथवा मूल्यांकन किया गया हैं।

कुंजी शब्दः- विश्लेषण, विश्लेषणात्मक दर्शन, तार्किक भाववाद, अर्थ का सत्यापन, तत्वमीमांसा, सार्थकता-निरर्थकता।

परिचयः- प्रथम विश्व युद्ध के कारण पूरी दुनिया में उथल-पुथल मच गया, सामान्य जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो गया एवं दर्शन जगत भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं रहा, क्योंकि अनेक दार्शनिकों ने इस युद्ध में भाग लिया जिसके फलस्वरूप समस्त शैक्षणिक गतिविधि क्षतिग्रस्त हो गयी। इस विश्व युद्ध की समाप्ति के उपरान्त समकालीन पाश्चात्य दर्शन में विश्लेषणात्मक शाखा के अन्तर्गत एक नवीन विचारधारा का उदय हुआ, जिसे प्रायः 'तार्किक भाववाद' के नाम से जाना जाता हैं। 1922 में, मोरिज श्लिक के नेतृत्व में इस विचारधारा का आरम्भ हुआ, जो कि 1929 में व्यवस्थित ढंग से प्राग में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन में विकसित हुई। तार्किक भाववाद के वैज्ञानिकों एवं दार्शनिक सदस्यों में मोरिज श्लिक, रूडोल्फ कार्नाप, ऑटो न्यूरॉथ, हरबर्ट फीगल, फेडरिक वाइजमैन, विक्टर क्राफ्ट, हंस हैन, कार्ल मेंगर, हंस राइखेनबाख, अर्न्स्ट नेगल, ए0 जे0 एयर, आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। तार्किक भाववाद को 'वियना सर्किल', 'तार्किक प्रत्यक्षवाद', 'नव्य अनुभववाद', 'वैज्ञानिक प्रत्यक्षवाद' आदि नामों से भी अभिहित किया जाता हैं। जहाँ एक ओर

तार्किक भाववाद के मूल में डेविड ह्यूम का अनुभववाद, ऑगस्ट कॉम्टे एवं अर्न्स्ट मैक का भाववाद अथवा प्रत्यक्षवाद निहित है तो वहीं दूसरी ओर इसमें फ्रेगे, रसेल एवं पूर्ववर्ती विट्गेन्सटाइन का तार्किक विश्लेषण भी समाहित हैं। ए0 जे0 एयर स्वयं अपनी पुस्तक *Language, Truth and Logic*[1] की प्रस्तावना में कहते हैं कि *इस पुस्तक में जिन विचारों को प्रस्तुत किया गया है, वे बर्ट्रेंड रसेल एवं विट्गेन्सटाइन के सिद्धान्तों से प्राप्त हुए हैं, जो कि स्वयं बर्कले एवं डेविड ह्यूम के अनुभववाद का तार्किक परिणाम हैं।* यद्यपि तार्किक भाववाद से पूर्वोत्तर अनुभववाद एवं पूर्वोत्तर भाववाद में असमानता भी है- **पहला** कि, पूर्वोत्तर अनुभववादी (जैसे- ह्यूम) मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अथवा प्रत्ययों का विश्लेषण करते हैं जबकि, तार्किक भाववादियों का सम्बन्ध तार्किक विश्लेषण अथवा भाषा के विश्लेषण से है; **दूसरा** कि, जहाँ एक ओर पूर्वोत्तर भाववादी तत्वमीमांसा का खण्डन इस आधार पर करते हैं कि यह असंभव है एवं इसका कोई लाभ नहीं है तो वहीं दूसरी ओर तार्किक भाववादियों का मानना हैं कि तत्वमीमांसीय कथन निरर्थक हैं। तार्किक भाववाद के मुख्यतः दो आधारभूत उद्देश्य थे-

1. विज्ञान को ज्ञान का आदर्श अथवा मानदण्ड के रूप में प्रतिष्ठित करना।
2. तत्व मीमांसीय कथनों की निरर्थकता को व्यक्त करना।

प्रश्न उठता है कि तत्त्व मीमांसा क्या हैं? इस प्रश्न का उत्तर देना स्वयं में दुरूह कार्य है, किन्तु पाश्चात्य दर्शन के हजारों वर्षों के इतिहास में तत्त्वमीमांसीय चिन्तन दार्शनिक परिचर्चा का विषय रही हैं। इस कारण कई विद्वानों की ऐसी मान्यता हैं कि दर्शनशास्त्र का इतिहास पूर्णतः तत्वमीमांसा का इतिहास हैं। इस मान्यता का खण्डन करते हुए एयर ने कहा कि ऐसा नहीं हैं कि दर्शनशास्त्र का इतिहास पूरी तरह से तत्वमीमांसा का इतिहास है, यद्यपि इसमें कुछ सीमा तक तत्वमीमांसा अवश्य शामिल रही है, किन्तु मैं सोचता हूँ कि यह स्पष्टतः प्रदर्शित किया जा सकता हैं कि जिन्हें सामान्यतः महान दार्शनिक कहा जाता है वे मूलतः तत्व मीमांसक नहीं अपितु विश्लेषणवादी थे।[2] हालांकि तार्किक भाववादियों ने तत्वमीमांसा को अतीन्द्रिय सत्ता अर्थात् अनुभवातीत पारमार्थिक सत्ता के अर्थ में ग्रहण किया, जैसा कि एयर अपने आलेख *'Demonstration of the Impossibility of Metaphysics*[3] में कहते हैं कि तत्वमीमांसा की मूलभूत धारणा है कि यहां एक अलौकिक (अथवा आंतरिक) पारमार्थिक सत्ता हैं। तार्किक भाववादियों के अनुसार अनुभव से परे इस सत्ता का विवरण प्रस्तुत करने के लिए तत्वमीमांसकों द्वारा छद्म-प्रतिज्ञप्तियां

(Pseudo-Propositions) दी जाती हैं जो शब्दों की ऐसी व्यवस्था होती हैं कि वे वाक्य होने का भ्रम उत्पन्न करती हैं, किन्तु वास्तव में वे अर्थहीन होती हैं। तार्किक भाववादियों ने तत्वमीमांसा की निरर्थकता को प्रदर्शित करने हेतु जिस सिद्धान्त का प्रयोग किया उसे 'अर्थ का सत्यापन सिद्धान्त' (The Verification Theory of Meaning) कहा जाता हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी प्रतिज्ञप्ति का अर्थ ही उसके सत्यापन की विधि है। सत्यापन सिद्धान्त की इस व्याख्या से यह समस्या उत्पन्न हुई कि किसी प्रतिज्ञप्ति की सत्यता की अनेक विधि होने से उसके अनेक अर्थ भी होंगे। इस समस्या को देखते हुए तार्किक भाववादियों ने इसमें संशोधन किया कि सत्यापन का आशय इन्द्रियानुभव द्वारा सत्यापन है और सत्यापन किसी प्रतिज्ञप्ति की सत्यता की विधि न होकर अपितु निकष है। ए0 जे0 एयर के अनुसार *'अर्थ का सत्यापन सिद्धान्त' एक ऐसा निकष है, जिसके अनुसार कोई प्रतिज्ञप्ति तभी सार्थक हो सकती है जब वह या तो विश्लेषणात्मक (Analytic) हो अथवा अनुभव द्वारा सत्यापनीय (Empirically Verifiable) हो।*[4] तार्किक भाववादियों के अनुसार हमारी भाषा में दो प्रकार के कथन निहित हैं- पहला, **भावात्मक (Emotive)** एवं दूसरा, **संज्ञानात्मक (Cognitive)**। भावात्मक कथन ऐसे कथन हैं जो भावनाओं, मनोवेगों, संवेदनाओं आदि को व्यक्त करते हैं और संज्ञानात्मक कथन ऐसे कथन हैं जो किसी कथन के शाब्दिक अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं। संज्ञानात्मक कथन भी दो प्रकार के हैं- **विश्लेषणात्मक (Analytic)** एवं **संश्लेषणात्मक (Synthetic)**। विश्लेषणात्मक कथन वे कथन हैं जिनकी वैधता उनमें निहित प्रतीकों की परिभाषाओं पर निर्भर करती हैं (जैसे- गणितीय एवं तर्कशास्त्रीय कथन) जबकि, संश्लेषणात्मक कथन वे कथन हैं जिनकी वैधता आनुभविक तथ्यों पर निर्भर होती हैं। तार्किक भाववादियों के अनुसार विश्लेषणात्मक एवं संश्लेषणात्मक दोनों प्रकार के कथन सार्थक हैं और वे सभी कथन जो इस कोटि से परे हैं वे या तो अर्थहीन (Meaningless) हैं अथवा निरर्थक (Nonsense) हैं। तत्वमीमांसीय, नीतिशास्त्रीय, सौन्दर्यशास्त्रीय एवं धर्मशास्त्रीय आदि प्रकार के कथन न तो विश्लेषणात्मक हैं न ही संश्लेषणात्मक हैं। इसलिए ये सभी प्रकार के कथन अर्थहीन हैं अथवा निरर्थक हैं। ए0 जे0 एयर ने तत्वमीमांसीय कथनों की निरर्थकता को सिद्ध करने के लिए सत्यापन के तीन प्रकारों का उल्लेख किया हैं-

1. व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक सत्यापन (Practical and Principle Verification)।
2. सबल एवं निर्बल सत्यापन (Strong and Weak Verification)।
3. प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सत्यापन (Direct and Indirect Verification)।

व्यावहारिक एंव सैद्धान्तिक सत्यापनः- व्यावहारिक सत्यापन का आशय है कि जिसके अन्तर्गत किसी कथन का सत्यापन इन्द्रियानुभव के द्वारा किया जा सकता है जैसे- 'मेरे घर के आंगन में तुलसी का पौधा है', 'अमुक व्यक्ति की बिल्ली काली है' आदि। यदि हमें व्यवहार में इन्द्रियानुभव के द्वारा परीक्षण करने पर ऐसा ही प्राप्त होता है तो यह कथन सत्य होगा अन्यथा असत्य। इसके अतिरिक्त, सैद्धान्तिक कथन ऐसे कथन हैं जिनका व्यावहारतः वर्तमान में परीक्षण संभव नही है, लेकिन भविष्य में उनकी सत्यापनीयता की संभावना है, जैसे- 'शनि ग्रह पर जीव-जन्तु है', 'मंगल ग्रह का अपना सूर्य अथवा चन्द्रमा है' आदि। इन कथनों का वर्तमान व्यवहार में सत्यापन संभव नहीं हैं, किन्तु हो सकता है कि भविष्य में कोई ऐसा वैज्ञानिक अविष्कार हो जाए जिसके द्वारा इन कथनों की सत्यापनीयता का पता लगाया जा सके, इसलिए यह सिद्धान्ततः सत्यापनीय एवं सार्थक हैं। ऐसा कोई कथन जो न तो व्यावहारिक न ही सैद्धान्तिक रूप से सत्यापनीय है वह निरर्थक हैं। तत्वमीमांसीय कथन जैसे- 'ईश्वर सृष्टि का जनक है', 'ईश्वर कृपालु है' आदि न तो व्यावहारिक न ही सैद्धान्तिक रूप से सत्यापनीय है; इसलिए निरर्थक हैं। यद्यपि व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक सत्यापन के भेद में कुछ समस्या प्रतीत होती है कि इसके द्वारा हम वर्तमान एवं भविष्य के कथनों का तो सत्यापन अथवा परीक्षण कर सकते हैं किन्तु अतीत के कथनों या ऐतिहासिक घटनाओं जैसे- 'पानीपत का प्रथम युद्ध सन् 1526 में हुआ था', 'महमूद गजनवी ने सोमनाथ मंदिर को सत्रह बार लूटा था' आदि का सत्यापन नहीं कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ कथन ऐसे भी हैं जो न तो व्यावहारिक न ही सैद्धान्तिक रूप में सत्यापनीय हैं, किन्तु सार्थक प्रतीत होते हैं, जैसे कि 'परमाणु बम के प्रयोग मात्र से समस्त जन-जीवन समाप्त हो जाएगा'। यह कथन व्यावहारिक रूप में सत्यापनीय नहीं है एवं जब इसके प्रयोग से समस्त जन-जीवन समाप्त हो जाएगा तो इस रूप में भी यह सत्यापनीय नहीं है फिर भी इसे निरर्थक नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक सत्यापन का भेद उचित नहीं कहा जा सकता।

सबल एवं निर्बल सत्यापनः- किसी भी कथन को सबल अर्थ में सत्यापनीय तब कहा जाएगा यदि और केवल यदि उस कथन का सत्यापन इन्द्रियानुभव द्वारा निश्चायक रूप से (अनिवार्यतः) संभव हो किन्तु कोई भी कथन निर्बल अर्थ में सत्यापनीय तब होगा जब वह इन्द्रियानुभव के द्वारा सम्भाव्य अथवा प्रायिक रूप में सिद्ध हो सके। कुछ तार्किक भाववादियों (जैसे- मोरिज श्लिक, एफ0 वाइजमैन आदि) ने सबल अर्थ में सत्यापनीय कथनों को ही सार्थक माना है किन्तु इसे स्वीकार नहीं

किया जा सकता हैं क्योंकि यदि हम सबल सत्यापनीयता को सार्थकता का निकष स्वीकार करते हैं तो सभी आनुभविक कथनों के साथ ही साथ वैज्ञानिक कथन एवं सामान्य तथ्यात्मक कथन जैसे- 'आर्सेनिक जहरीला है', 'सभी मनुष्य मरणशील है' आदि निरर्थक सिद्ध हो जायेंगे। यदि हम इन कथनों का इन्द्रियानुभव के द्वारा सत्यापन करने का प्रयास भी करें तो उसके इतर भी हम अकाट्य या निश्चित रूप से इसकी सत्यता सिद्ध नहीं कर सकते एवं इस कारण यदि हम इन्हें अर्थहीन अथवा निरर्थक कहते हैं तो इसे भी किसी स्थिति में उचित नहीं कहा जा सकता। इस समस्या को देखते हुए कुछ तार्किक भाववादियों (जैसे- श्लिक) का कहना है कि ऐसे कथन या तो 'निरर्थकता का अंश' (Pieces of Nonsense) हैं या 'महत्वपूर्ण प्रकार के निरर्थक' (Important Types of Nonsense) हैं।[5] यहाँ 'निरर्थकता का अंश' या 'महत्वपूर्ण प्रकार के निरर्थक' शब्द का प्रयोग बचाव करने का प्रयास मात्र है जो कि विरोधाभासी प्रतीत होता हैं; क्योंकि किसी कथन को 'महत्वपूर्ण' एवं 'निरर्थक' एक साथ नहीं कहा जा सकता हैं और साथ ही साथ यदि हम किसी कथन को 'निरर्थकता का अंश' कहेंगे तो उसमें कुछ न कुछ 'सार्थकता का अंश' अवश्य निहित होगा, इस प्रकार यहाँ आत्म-व्याघाती दोष (Fallacy of Self-Contradiction) होगा। यही कारण है कि इस समस्या से बचने के लिए एयर ने अपनी पुस्तक *Language, Truth and Logic* के प्रथम संस्करण (1936) में स्वीकार किया कि कोई भी कथन केवल निर्बल अर्थ में सत्यापनीय हो सकता है, सबल अर्थ में नहीं। एयर इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं *किसी कथन को निर्बल अर्थ में सत्यापनीय कहने का तात्पर्य है कि उसके प्रति हमारा ऐसा विश्वास है कि हम व्यवहार में उसी प्रकार कार्य कर सकते हैं।* इसे स्वीकार करने में यह समस्या है कि यदि कोई कथन केवल निर्बल अर्थ में सत्यापनीय होगा तो वैज्ञानिक कथनों के साथ ही साथ तत्वमीमांसीय कथन भी सार्थक हो जायेंगे और ऐसी परिस्थिति में इसमें अतिव्याप्ति का दोष (Fallacy of Overlapping) होगा। इसके अतिरिक्त, यहाँ एक अन्य समस्या भी है कि जब सभी आनुभविक कथन सम्भाव्य हैं जिनका निरंतर इन्द्रियानुभव के परीक्षण जारी रहता है, तब किसी कथन की सत्यता अथवा असत्यता के निर्धारण निकष क्या होगा? यद्यपि इस समस्या को ध्यान में रखते हुए एयर अपनी पुस्तक *Language, Truth and Logic* के द्वितीय संस्करण (1946) में अपनी स्थिति में परिवर्तन करते हुए कहते है कि *आनुभविक कथनों में कम से कम 'मूल प्रतिज्ञप्तियों' (Basic Propositions) को निश्चित एवं अकाट्य रूप से सत्यापित किया जा सकता है।* एयर की मान्यता है कि

मूल प्रतिज्ञप्तियां जैसे- 'मुझे भूख लगी है' या 'मुझे दर्द है' आदि अकाट्य रूप से सत्य है, क्योंकि जो भी कहा जा रहा है वह स्वयं की साक्षात अनुभूति के द्वारा कहा जा रहा है इसलिए इसमें संदेह की गुंज़ाइश नहीं हैं। उनका यह भी मानना है कि जब हमारा संबंध किसी साक्षात विषय से होता है तो वह सबल अर्थ में सत्यापनीय होता है, इस प्रकार मूल प्रतिज्ञप्तियों की सार्थकता सबल अर्थ में सत्यापनीय हैं। तार्किक भाववादियों के द्वारा सबल एवं निर्बल अर्थ में सत्यापन के भेद के विरूद्ध अनेक दार्शनिकों ने आपत्तियां की। जैसा कि मोरिज लैज रोविट्ज अपने आलेख *'Strong and Weak Verification II'*[8] में कहते है कि किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत अनुभव को व्यक्त करने वाले कथनों की निश्चयात्मकता अथवा अकाट्यता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता हैं। ऐसे कथनों (जैसे- मुझे भूख लगी है) की सत्यापनीयता की संभावना शायद ही होती होगी (अर्थात् कभी नहीं होती), इसलिए मूल प्रतिज्ञप्तियों में भी सबल अर्थ में सत्यापन लागू नहीं हो सकता। उपर्युक्त कारणों से सबल एवं निर्बल सत्यापन का भेद अपने प्रयोजन में सफल प्रतीत नहीं होता, इसलिए एयर सत्यापनीयता का तीसरा भेद प्रस्तुत करते हैं।

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सत्यापनः- तार्किक भाववादियों (विशेषतः एयर) ने प्रत्यक्ष सत्यापन के साथ ही साथ अप्रत्यक्ष सत्यापन को भी सार्थकता का निकष स्वीकार किया हैं। किसी भी कथन के प्रत्यक्ष रूप से सत्यापनीयता का तात्पर्य है कि कोई कथन स्वयं में निरीक्षणात्मक कथन (Observational Statement) हो अथवा एक या एक से अधिक स्वीकार्य कथनों के संयोजन से किसी निरीक्षणात्मक कथन को निगमित किया जा सके। प्रत्येक निरीक्षणात्मक कथन प्रत्यक्षतः सत्यापनीय होता है, इसलिए वह सार्थक है जैसे- 'घास हरी है', 'दही खट्टी है', 'कलम लाल है' आदि। जबकि, किसी भी कथन के अप्रत्यक्ष सत्यापन की **दो मूलभूत शर्तें** हैं- पहली कि, कोई कथन अप्रत्यक्ष रूप से सत्यापनीय है जबकि वह कथन अन्य स्वीकार्य कथनों के संयोग से एक ऐसे निरीक्षणात्मक कथन को निगमित करता हो जो केवल उन अन्य स्वीकार्य कथनों से निगमित न हो; दूसरी शर्त यह है कि उन अन्य स्वीकार्य कथनों के अन्तर्गत ऐसा कोई भी कथन न हो जो या तो स्वयं में विश्लेषणात्मक न हो, या प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में सत्यापनीय न हो।[9] इसे अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए उदाहरण का प्रयोग किया जा सकता है जैसे- 'कल भूकम्प आया था' इस कथन की सार्थकता का निरीक्षण प्रत्यक्ष सत्यापन के द्वारा नहीं किया जा सकता, किन्तु इससे यह निरर्थक सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि इस कथन का अप्रत्यक्षतः सत्यापन

अवश्य किया जा सकता हैं। 'कल भूकम्प आया था' के अप्रत्यक्ष रूप से सत्यापन हेतु इस कथन के साथ एक अन्य स्वीकार्य कथन 'भूकम्प आने पर जान-माल की अत्यधिक हानि होती है' को संयुक्त करने पर निम्नलिखित निरीक्षणात्मक कथन को निगमित किया जा सकता है कि 'जान-माल की अत्यधिक हानि हुई है'। यह कथन कि 'जान-माल की अत्यधिक हानि हुई है' अप्रत्यक्ष सत्यापन की दोनों मूलभूत शर्तों की पूर्ति करता हैं, प्रथम शर्त की पूर्ति इस प्रकार होती है कि यह निरीक्षणात्मक कथन केवल उस अन्य स्वीकार्य कथन कि 'भूकम्प आने पर जान-माल की अत्यधिक हानि होती है' से अकेले निगमित नहीं होता है अपितु जिस कथन (कल भूकम्प आया था) का सत्यापन करना है उसके संयोग से निगमित होता हैं। इसके अतिरिक्त, अप्रत्यक्ष सत्यापन की दूसरी शर्त कि 'उस अन्य स्वीकार्य कथन के अन्तर्गत ऐसा कोई भी कथन न हो जो या तो स्वयं में विश्लेषणात्मक कथन न हो, या प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में सत्यापनीय न हो' की पूर्ति भी इस कथन में हो रही हैं। अतः 'कल भूकम्प आया था' कथन अप्रत्यक्ष रूप से सत्यापनीय सिद्ध होने के कारण सार्थक कथन है।

यद्यपि प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सत्यापन के भेद को स्वीकार करने में भी समस्या है और वह समस्या यह है कि यदि प्रत्यक्ष सत्यापन को सार्थकता का निकष कहा जाए तो तत्वमीमांसीय कथनों के साथ ही साथ वैज्ञानिक कथनों की सार्थकता सिद्ध नहीं हो सकेगी। इस समस्या के कारण ही **कार्ल पॉपर** ने कहा कि तार्किक भाववाद ने न केवल तत्वमीमांसा अपितु प्राकृतिक विज्ञान को भी नष्ट कर दिया।[10] इसके अतिरिक्त, यदि अप्रत्यक्ष सत्यापन को सार्थकता का निकष मानें तो इसके आधार पर तत्वमीमांसीय कथनों को भी सार्थक सिद्ध किया जा सकता है, इस रूप में यह भी अतिव्याप्ति के दोष (Fallacy of Overlapping) से ग्रस्त है। ह्यूम के दर्शन की भांति तार्किक भाववाद की स्थिति को देखते हुए **जॉन पॉसमोर** टिप्पणी करते हैं कि यदि तत्वमीमांसा को अग्नि को सौप दिया जाए तो विज्ञान भी जल जाता है और यदि विज्ञान की अग्नि की लपटों से रक्षा करने का प्रयत्न भी करें तो तत्वमीमांसा भी रेंगते हुए वापस लौट आती हैं।[11]

निष्कर्षः- प्रस्तुत शोध-पत्र में यदि हम तार्किक भाववाद का सूक्ष्मतापूर्वक अवलोकन करें तो हमें यह प्राप्त होगा कि तार्किक भाववाद का उदय एक ऐसे कालक्रम में हुआ था जब पूरी दुनिया प्रथम विश्वयुद्ध के प्रभाव से ठीक ढंग से उबर भी नहीं पायी थी और इसके अलावा, तार्किक भाववाद में दार्शनिकों के साथ ही साथ

अनेक वैज्ञानिक सदस्य भी थे तो इनका रूझान विज्ञान की ओर अधिक होना स्वाभाविक है किन्तु, सत्यापनीयता को निकष मानकर तत्वमीमांसा का खण्डन करना तार्किक भाववादियों की भूल का परिचायक हैं। यही कारण है कि **एफ0 वाइजमैन** को कहना पड़ा कि तत्वमीमांसा को निरर्थक कहना ही निरर्थक हैं।[12] वास्तविकता में, जब हम भाषा के द्वारा परमार्थ के बारे में कुछ कहने का प्रयास करते है तभी हमें द्वैत प्राप्त होता है, इसीलिए **विट्गेन्सटाइन** ने ***Tractatus***[13] के अन्त में कहा था कि हम जिसका भाषा के द्वारा निर्वचन नहीं कर सकते वहां हमें मौन रहना चाहिए। इसी प्रकार उपनिषदों में भी कहा गया है कि ***यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः। अ विज्ञातं विजानतां विज्ञातम विजानताम्।।***[14] अर्थात् जो यह निर्वचन करता है कि 'मैं परमार्थ को जानता हूं' वास्तव में वह परमार्थ को नहीं जानता है अपितु जो यह निर्वचन नहीं करता है कि 'मैं परमार्थ को जानता हूं' वास्तव में वहीं परमार्थ को जानता हैं। साथ ही साथ भारतीय परम्परा में भी 'अपरोक्षानुभूति' की संकल्पना भी विद्यमान है, जिसके अनुसार यह मान्यता है कि तर्क या बुद्धि केवल व्यवहार तक ही सीमित है, परमार्थ में उसकी गति नहीं हैं। जब बुद्धि को अपनी सीमा का ज्ञान होता है तब वह अपरोक्षानुभूति की ओर संकेत करती है, जो ज्ञाता-ज्ञेय भेद रहित विशुद्ध चैतन्य है। परमार्थ बुद्धि से परे स्वतःसिद्ध एवं स्वप्रकाश है। परमार्थ 'चतुष्कोटिविनर्मुक्त' है अर्थात् परमार्थ वह है जहाँ से हमारी भाषा वापस लौट आती है; क्योंकि भाषा भेदात्मक है जबकि परमार्थ अभेदात्मक है, इसलिए भाषा परमार्थ का निर्वचन नहीं कर सकती। अतः परमार्थ भाषा, बुद्धि अथवा तर्क की अवस्था न होकर अपरोक्षानुभूति की अवस्था है, परमार्थ विषयक ज्ञान की परिणति इसी अपरोक्षानुभूति में होती हैं। इसके अतिरिक्त, यदि हम पाश्चात्य दर्शन का ही संदर्भ लें तो अनेक दार्शनिकों (जैसे- काण्ट, ब्रेडले आदि) का मानना है कि परमार्थ का ज्ञान हम सीमित बुद्धि अथवा इन्द्रियानुभव द्वारा नहीं प्राप्त कर सकते हैं किन्तु परमार्थ हमारी अन्तःप्रज्ञात्मक अनुभूति अथवा नैतिक आस्था का विषय है। इन्हीं कारणों से ए0 जे0 एयर ने 1973 में प्रकाशित अपनी पुस्तक ***The Central Questions of Philosophy***[15] में अपने पूर्ववर्ती विचारों को परिवर्तित करते हुए कहा कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि ईश्वर में विश्वास प्रायः नैतिक प्रेरणा का स्त्रोत रहा है। कभी-कभी यह प्रेरणा किसी देवता या किसी संत के लिए होती है कि वे मनुष्यों से इस प्रकार प्रेम करें कि मनुष्य अपने विश्वासों को कर्म के रूप में व्यक्त करें अथवा मनुष्यों से इस प्रकार प्रेम करें कि वे सभी समान रूपेण ईश्वर की संतान हैं।

संदर्भ एवं टिप्पणीः-

1. Ayer, A. J. (1952). Language, Truth and Logic. New York: Dover Publication Inc., p. 31.
2. Ibid., p. 52.
3. Ayer, A. J. (1934). 'Demonstration of The Impossibility of Metaphysics'. Mind, Vol. 43, No. 171, pp. 335-345.
4. Ayer, A.J. (1952). Language, Truth and Logic. op.cit., p. 5.
5. Ibid., p. 37.
6. Ibid., p. 100.
7. Ibid., p. 10.
8. Lazerowitz, M. (1950). 'Strong and Weak Verification II'. Mind, New Series, Vol. 59, No. 235, pp. 345-357.
9. Ayer, A. J. (1952). Language, Truth and Logic. op.cit., p. 13.
10. Datta, D. M. (1961). The Chief Currents of Contemporary Philosophy. Calcutta: Calcutta University Press, p. 472.
11. Passmore, J. (1917). A Hundred Years of Philosophy. London: Gerald Duckworth & Co. Ltd., pp. 392.
12. Datta, D.M. (1961). The Chief Currents of Contemporary Philosophy. op.cit., p. 482.
13. Wittgenstein, L. (2001). Tractatus-Logico-Philosophicus. (Trans.). D.F. Pears & B.F. McGuinness, London & New York: Routledge Classics, T.7.
14. केन उपनिषद,2.3।
15. Ayer, A.J. (1973). The Central Questions of Philosophy. London: Weidenfeld &Nicolson, p. 224.

प्रियान्शु अग्रवाल
(यू0 जी0 सी0- जे0 आर0 एफ0)
शोध छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
प्रयागराज- 211002, उ0 प्र0।